SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

स्वामी विवेकानन्द जी की अल्मोड़ा यात्रा– एक सुखद अनुभव

संतोष रजक, (Ph.D.) इतिहास विभाग,
रामजयपाल कॉलेज, छपरा, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
संतोष रजक, (Ph.D.) इतिहास विभाग,
रामजयपाल कॉलेज, छपरा, बिहार, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 12/10/2020
Revised on : -----
Accepted on : 19/10/2020
Plagiarism : 01% on 12/10/2020

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

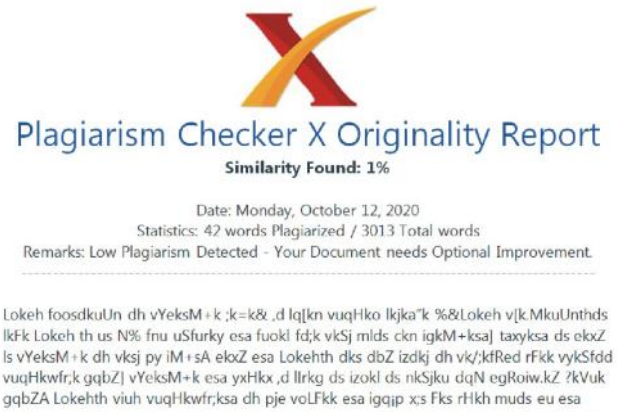

Date: Monday, October 12, 2020
Statistics: 42 words Plagiarized / 3013 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

Lokeh foosdkuUn dh vYeksM+k ;k=k& ,d lq[kn vuqHko lkjka"k %&Lokeh v[k.MkuUnthds lkFk Lokeh th us N% fnu uSfurky esa fuokl fd;k vkSj mlds ckn igkM+ksa] taxyksa ds ekxZ ls vYeksM+k dh vksj py iM+sA ekxZ esa Lokehth dks dbZ izdkj dh vk/;kfRed rFkk vykSfdd vuqHkwfr;k gqbZ] vYeksM+k esa yxHkx ,d lIrkg ds izokl ds nkSjku dqN egRoiw.kZ ?kVuk gqbZA Lokehth viuh vuqHkwfr;ksa dh pje voLFkk esa igqap x;s Fks rHkh muds eu esa

शोध सार

स्वामी अखण्डानन्दजी के साथ स्वामी जी ने छः दिन नैनिताल में निवास किया और उसके बाद पहाड़ों, जंगलों के मार्ग से अल्मोड़ा की ओर चल पड़े। मार्ग में स्वामीजी को कई प्रकार की आध्यात्मिक तथा अलौकिक अनुभूतिया हुई। अल्मोड़ा में लगभग एक सप्ताह के प्रवास के दौरान कुछ महत्वपूर्ण घटना हुई। स्वामीजी अपनी अनुभूतियों की चरम अवस्था में पहुँच गये थे, तभी उनके मन में समाधि के अवस्था में डुबे रहने के बजाय कर्म की तीव्र प्रेरणा का बोध हुआ और आध्यात्मिक साधनाओं से बाहर निकल आये और उन्होने सोचा कि हम किसी विशेष कर्म करने के लिए इस धरती पर आये है। एक पहाड़ी गुफा में चिंतन के दौरान उन्हे लगा की इसी कर्म प्रेरणा का अनुसरण करना उचित होगा।

मुख्य शब्द

विवेकानन्द जी, आध्यात्मिक, अनुभूति।

अगस्त 1890 के अन्तिम दिनों में अखण्डानन्द के साथ स्वामीजी अल्मोड़ा पहुँचे। स्वामी सारदानन्द तथा कृपानन्द (वैकुण्ठनाथ सान्याल) वहाँ पहले से ही पाताल देवी के मन्दिर के निकट की कुटिया में तपस्या कर रहे थे। ''अल्मोड़ा पहुँचने पर स्वामी अखण्डानन्द उन्हें अम्बादत के बगीचे में ले गए ओर उन्हें वहाँ रखकर अल्मोड़े में अन्यत्र (पाताल देवी मन्दिर के पास) तपस्यारत् स्वामी सारदानन्द और कृपानन्द (वैकुण्ठनाथ सान्याल) नामक अन्य दो गुरूभाइयों को सूचना देने गए। सूचना मिलते ही ये दोनों अम्बादत्त के बगीचे को चले। उन लोगों ने थोड़ी ही दूर आगे जाने पर देखा कि स्वामीजी स्वयं उन लोगों की ओर आ रहे है। तब सभी एक साथ ही अपने आश्रयदाता लाला बद्री साह के घर पहुँचे। साह जी ने उन लोगों का सादर स्वागत किया। इस घर में श्रीकृष्ण जोशी नामक एक रिश्तेदार (अभिलेखकर्ता) के साथ

सन्यास–ग्रहण की आवश्यकता के सम्बन्ध में स्वामीजी का लम्बा वाद–विवाद हुआ। ''स्वामीजी ने अपनी अनुभूति संवलित अकाटय युक्तियों के द्वारा इस विषय को इस प्रकार समझा दिया कि जोशीजी यह मानने को विवश हो गए कि त्याग ही भारत का सर्वश्रेष्ठ आदर्श है।''[1]

स्वामीजी की बंगला जीवनी में वहाँ घटित एक विचित्र घटना का वर्णन है। वहाँ पाद–टिप्पणी में इसके परवर्ती काल में घटित होने की सम्भावना व्यक्त की गयी है। घटना इस प्रकार है– बद्री साह के घर में निवास के दौरान एक दिन संध्या के समय एक अद्‌भुत घटना हुई। वे लोग बैठे हुए थे, तभी गांव के भीतर जोरों से ढोल बजने की आवाज सुनाई थी और थोड़ी देर बाद ही एक स्थानीय व्यक्ति ने आकर बद्री साह से कहा, ''महाशय, जल्दी आइये, एक आदमी पर भूत चढ़ गया है।'' बद्री साह तत्काल उठ खड़े हुए। स्वामीजी भी कुतूहलवश उनके साथ हो लिये। घटनास्थल पर पहुंचकर उन्होंने देखा कि भूताविष्ट व्यक्ति लेटा हुआ पीड़ा से छटपटा रहा है और अनेक लोग उसके चारों ओर बैठकर उसके हाथ–पैर पकड़कर दबाये हुए है। एक अन्य व्यक्ति (ओझा) भूत को भगाने के लिये मंत्रोच्चारण कर रहा है ओर बीच–बीच में एक लाल–तपती हुई कुल्हाड़ी को उठाकर उसके शरीर पर जगह–जगह छुला रहा हैं। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि कुल्हाड़ी से उसके बालों का अंगों का स्पर्श किये जाने पर भी कुछ भी जल नही रहा है। इस घटना को देखकर स्वामीजी अवाक् रह गये। तभी गैरिक वस्त्रधारी महात्मा को देखते ही सभी उनके लिये सम्मानपूर्वक रास्ता छोड़कर किनारे खड़े हो गये ओर बोले, ''महाराज, आप दया करके इस व्यक्ति को स्वस्थ कर दीजिये।'' स्वामीजी तो केवल घटना को देखने आये थे, उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उन्हें ओझा होकर भूत छुड़ाना पड़ेगा। परन्तु लोगों द्वारा बारम्बार अनुरोध के सामने हार मान कर आखिरकार वे प्रेताविष्ट व्यक्ति की ओर अग्रसर हुए। उसके पास पहुँचकर सबसे पहले वे कुल्हाड़ी की जांच करने को प्रस्तुत हुए। तब तक उसकी लालिमा जा चुकी थी, तथापि उस पर हाथ लगाते ही हाथ में जलन होने लगी। उस समय वे भला भूत क्या छुड़ाते, स्वयं ही परेशान थे। खैर, उन्होंने अपनी हाथ की पीड़ा भुलाकर उस प्रेतग्रस्त के मस्तक पर हाथ रखा और एकाग्र चित से थोड़ी देर अपने इष्टदेव के मंत्र का जप किया। बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि वैसा करने के 10–12 मिनट के भीतर ही वह व्यक्ति स्थिर हो गया और धीरे–धीरे पूरी तौर से शान्त तथा स्वस्थ हो उठा। स्वामीजी बताते है, ''तब गांव वालों की मेरे प्रति भक्ति का कोई ठिकाना न रहा। वे तो मुझे भगवान ही समझने लगे। परन्तु मैं इस घटना को कुछ भी नहीं समझ बाद में भी कुछ नहीं जान सका। अन्त में मैं और कुछ भी न कहकर घरवाले के साथ कुटिया में लौट आया, तब रात के कोई बारह बजे होंगे। आते ही लेट गया, परन्तु जलन के मारे और इस घटना का कोई भेद न निकाल सकने के कारण नींद नहीं आयी। जलती हुई कुल्हाड़ी से मनुष्य का शरीर दग्ध नहीं हुआ।– यह सोचकर विचार करने लगा, 'There are more things in heaven and earth than dreamt of in your Philosophy'– (पृथ्वी और स्वर्ग में ऐसी अनेक चीजें हैं, दर्शन–शास्त्री जिन्हे स्वप्न में भी नहीं देख सके है।)''[2]

साहजी की श्रद्धा–भक्ति तथा अतिथि–परायणता देखकर स्वामीजी मुग्ध हो गये। बाद में उन्होंने कहा था– ऐसे भक्त संसार में विरल हैं। पुरानी अंग्रेजी जीवनी के अनुसार– इस विचित्र घटना के बाद स्वामीजी ने कुछ दिन और लाला बद्री साह के घर में निवास किया। इसके बाद वे कठोर साधना के निमित एक निर्जन गुफा में चले गये। वहाँ वे दिन–रात ध्यान और तपस्या करने लगे। उन्होंने परम सत्य की उपलब्धि का संकल्प कर रखा था। उस निर्जन में कोई भी प्राणी उनके ध्यान में बाधा नहीं डाल सकता था। वहाँ उन्हें कई आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हुईं और उनका मुखमण्डल दिव्य तेज से आलोकित होने लगा। जब वे अपनी अनुभूतियों की चरम अवस्थामें पहुँच रहे थे, तभी उनके चित में अपने चिर–अभिलषित व्यक्तिगत समाधि के परमानन्द की अनुभूति में डूबे रहने की इच्छा के स्थान पर कर्म की तीव्र प्रेरणा का बोध हुआ, और उसने मानों उन्हें बलपूर्वक उनकी साधनाओं से बाहर खींच निकाला। यह उनके लिये एक बड़ा ही विचित्र समय था। उनके गुरूभाई अखण्डानन्द ने इस विषय में कहा था, ''मैने पाया कि जब–जब स्वामीजी ने मौन तथा विशुद्ध साधनामय जीवन अपनाने की चेष्टा की, तब–तब परिस्थितियों के दबाव ने उसे छोड़ने के लिये विवश कर दिया। उन्होंने एक उद्देश्य की पूर्ति के लिये जन्म–ग्रहण किया था और उनकी अन्तर्निहित मूल प्रकृति ही उन्हें इस कार्यधारा को अपनाने के लिये विवश कर देती थी।''

पहाड़ी गुफा में इस अनुभव के बाद अब उन्हें लगा कि इसी कर्मप्रेरणा का अनुसरण करना उचित होगा। अतः वे लाल बद्री साह के घर में अपने गुरूभाइयों के बीच लौट आये।[3]

इसी प्रसंग में भगिनी निवेदिता लिखती हैं – ''इन्हीं दिनों उन्होंने कुछ माह एक पर्वतीय ग्राम के ऊपर स्थित एक गुफा में बिताये थे। मैंने केवल दो बार ही उन्हें इस अनुभव का उल्लेख करते सुना है। एक बार वे बोले, 'इन्हीं दिनों ''मुझे कार्य करना होगा''– इस धारणा ने मुझे जितना अभिभूत किया, उतना पूरे जीवन में कभी नहीं किया। मानों मुझे बलपूर्वक गुफाओं के जीवन से निकालकर समतल प्रदेश में विचरण करने को विवश कर दिया गया था।'' अन्य समय उन्होंने किसी से कहा था, ''साधु की जीवनचर्या मात्र ही उसकी साधुता की परिचायक नहीं है, क्योंकि सम्भव है कि गुफा में बैठे–बैठे उसका सारा मन इसी बात से आच्छत्र हो जय कि रात को कितनी रोटियाँ खाने को मिलेंगी।''[4]

किसी भी ग्रन्थ में उक्त गुफा के नाम का उल्लेख नही मिलता, तथापि स्थानीय किंवदन्तियों से पता चलता है कि उन्होंने अल्मोड़े से करीब पांच मील दूरी पर उत्तर–पूर्व में स्थित कासारदेवी की एक गुफा में यह साधना की थी।

स्वामीजी जब गुफा छोड़कर अल्मोड़ा नगर में लौटे, तो साहजी के घर में एक भयानक समाचार उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ दिनों पूर्व (कलकत्ते से एक टेलीग्राम भेजा गया था, जिसमें अत्यन्त प्रातिकूल तथा दयनीय परिस्थितियों में उनकी एक बहन की आत्महत्या का समाचार था। इससे उनके हृदय में बड़ी पीड़ा हुई, तथापि इस शोक के बीच भी उन्हें अन्य वास्तविकताएँ भी दिख पड़ीं। अपनी इस व्यक्तिगत शोक के माध्यम से, मानों उन्हें भारतीय नारियों की महान् समस्याओं के विषय में झटका देकर जगा दिया गया हो और उनके हृदय में देशभक्ति की ज्वाला को भड़का दिया हो।

इस प्रसंग में स्वामीजी के छोटे भाई महेन्द्रनाथ दत्त ने लिखा है, ''जिस दिन मेरी छोटी बहन योगेन्द्रबाला ने शिमला पहाड़ में आत्महत्या की, नरेन्द्रनाथ उस समय अल्मोड़ा में थें वह रविवार का दिन था। मैं, वराहनगर मठ में गया और फिर बेलूड़ ग्राम में श्रीमाँ जिस मकान में रहती थीं, वहाँ गया। गिरीश बाबू भी उस दिन उस मकान में गये थे। योगेन महाराज व्यवस्थापक के रूप में रहते थे। सबने सलाह करके निश्चत किया कि नरेन्द्र को इसकी सूचना देना आवश्यक है। परन्तु नरेन्द्र को सूचित करने से वह नाराज होगा, इसलिये शरत् को समाचार देना ही उचित होगा। अतः योगेन महाराज, बाबूराम महाराज तथा मैं – हम तीनो ने हावड़ा स्टेशन पर जाकर अल्मोड़ा में बद्री साह के घर शरत् महाराज के नाम तार भेजा। शरत् महाराज ने यथासमय नरेन्द्रनाथ को वह तार सुनाया था।''

उन दिनों हिमालय में भीषण बाढ़ आयी हुई थी, जिसका प्रभाव कलकत्ते तक में आ पहुंचा था, इसी का एक सजीव वर्णन करते हुए उन्होंने अन्यत्र, और भी विस्तार से लिखा है, ''सम्भवतः 1890 का वैशाख का महीना था। रविवार को सुबह शिमला पहाड़ से एक पत्र आया कि नरेन्द्रनाथ की छोटी बहन ने वहाँ आत्महत्या कर लिया है। वर्तमान लेखक शोकार्त मन से वराहनगर मठ के लिये चल पड़ा और साढ़े दस बजे वहाँ पहुँचा। मठ में तब शशी महाराज, शिवानन्द स्वामी, निरंजन महाराज, बाबूराम महाराज, दक्ष महाराज तथा सुरेन मुखोपाध्याय उपस्थित थे। ग्यारह बजे परमानिक घाट के पास के अश्वत्थ वृक्षवाले घाट पर सभी स्नान कर रहे थे। दाशरथी सान्याल भी सबके साथ बातें करते हुए स्नान कर रहे थे। सहसा देखने में आया कि गंगा के उत्तर की ओर से 10–12 फीट या उससे भी ऊँची जलराशि धीरे–धीरे दक्षिण की ओर चली आ रही है। पहले से ही पुलिस की व्यवस्था थी। भीषण जलराशि देखकर सभी लोग नीचे से चढ़कर ऊपर के पक्के तटबन्ध पर चले आये। तीन–चार मिनट के भीतर ही जल ने आकर अश्वत्थ वृक्ष के एक तिहाई अंश को डुबा दिया। बाद में सम्भवतः वह वृक्ष पूरा डूब गया था। स्नान के बाद कुछ लोग वराहनगर मठ में आकर प्रसाद ग्रहण करने के बाद (गंगाजी के उस पर) बेलूड़ (घाट) जाने की तैयारी करने लगे। लगभग एक बजे वर्तमान लेखक तथा बाबूराम महाराज– दोनों जाकर एक नाव में बैठे। दक्ष महाराज जाकर पारघाटा तक पहुँचा आये। नाव गंगा के उस पार पहुँचकर घुसुड़ी के पास तेज धार में जा पड़ी। पानी तब तक अश्वत्थ वृक्ष के पत्तों तक पहुँच चुका था। अस्तु। ऊपर की जमीन पर उतरकर हम ज्योंही जाने लगे, त्योंही

जल ने आकर ऊपर की भूमि पर आक्रमण किया और इसका कोई भेद ही नही रहा कहाँ जमीन है ओर कहाँ गंगा है।

''श्रीमाँ उन दिनों उसी स्थान पर एक मकान में निवास करती थीं। अब वह मकान टूटकर निश्चिह्न हो चुका है। वर्तमान लेखक का तत्काल योगेन महाराज से भेंट करना नितान्त आवश्यक था, इसलिये वे उनके पास गये। उस दिन रविवार था, गिरीश बाबू भी दो–एक लोगों को साथ लिये श्रीमाँ का दर्शन करने आये हुए थे। बाबूराम महाराज के भाई तुलसीराम, लाटू महाराज तथा अन्य छह–सात लोग भी वहाँ उपस्थित थे।

''हिमालय की एक पहाड़ टूटकर गणा या गोना नामक नदी के जल में आ पड़ने से कई वर्षों तक उसका जल अवरूद्ध था। वह स्थान नन्दप्रयाग के पास हैं अवरोध के रूप में पड़ा दीवाल सरीखा पहाड़ के फट जाने से उससे अवरूद्ध जल भैरव–निनाद के साथ नीचे दौड़ने लगा और विभिन्न स्थानों को डुबाते हुए आखिरकार कलकत्ते आ पहुँचा था। इसी को गोना बाढ़ कहते हैं।

''(बेलूड़ के पास स्थित) धुसुड़ी गांव की जमीन नीची होने के कारण पानी पीछे से घूमकर आते हुए गांव के अनेक घरों को डुबाने लगा। कुछ घरों के लोग बिस्तर आदि लेकर दूसरी मंजिल पर चले गये, परन्तु जिनका मकान दुमंजला नहीं था, उनका सब कुछ डूबने लगा। चारों ओर हाहाकार मच गया। (बाद में) अपराह्न में तीन बजे जल का प्रकोप काफी घट गया ओर गाँव से पानी भी निकल गया था।

''नरेन्द्रनाथ, शरत् महाराज आदि कई लोग उस समय अल्मोड़ा में बद्री साह के यहाँ निवास कर रहे थे। योगेन महाराज, बाबूराम पमहाराज तथा गिरीश बाबू– इन तीनों ने मिलकर निर्णय किया कि शरत् महाराज के नाम से टेलीग्राम करने से वे उसे नरेन्द्रनाथ के पास भेजने की व्यवस्था कर सकेंगे, क्योंकि नरेन्द्रनाथ की माता (श्रीमती भुवनेश्वरी देवी) उस समय खूब शोकार्त हो पड़ीं थीं।

''योगेन महाराज, बाबूराम महाराज तथा वर्तमान लेखक एक नाव लेकर कलकत्ते की ओर चले। उस समय गंगा में ओर भी दो–चार नावें निकली हुई थीं। नाव मध्य भाग से चल रही थी। जब वह काशी मित्र घाट के पास पहुँची, तभी काशी मित्र का पूरा घाट ही सहसा जलमगन हो गया। इससे पानी में बड़ी हलचल हुई ओर तरंगें उठीं, परन्तु हमारी नाव गंगा के बीच में होने के कारण उसे कोई क्षति नहीं पहुँची। गंगा में जो रक्षाबोया लगाये हुए थे, उनके ऊपर लगे छोटे–छोटे लाल निशान बंधे हुए थे, वे सब डूब गये थे, केवल निशान का लाल कपड़ा भर जल के ऊपर था। बागबाजार से पोल तक की जमीन ऊँची थी, वहाँ तक पानी नहीं चढ़ सका था। पोल एक विशाल त्रिभुज के आकार का हो गया था। बैलगाड़ियों तथा घोड़ागाड़ियों का आवागमन बन्द था। हमारी नौका बड़ाबजार के मिरबहर घाट पर लगी। हम तीनों बड़े कष्टपूर्वक उस तिकोने पोल से होकर पहाड़ की चढ़ाई तथा उतराई के समान हावड़ा स्टेशन गये ओर शरत् महाराज के नाम टेलीग्राम देकर पूर्ववत् पोल को पार करके रामतनु बोस की गली में लौट आये।

''नरेन्द्रनाथ की माता उस मसय शोकार्त होकर रो रही थीं। योगेन महाराज तथा बाबूराम महाराज नरेन्द्रनाथ की माता के प्रति बड़ी श्रद्धाभाव रखते थे। वे भी योगेन महाराज तथा बाबूराम महाराज को अत्यन्त स्नेह करती थी। बाबूरमा शोकार्त होकर चुपचाप बैठे रहे ओर योगेन महाराज धीरे–धीरे बड़े मधुर शब्दों में उन्हें सांत्वना प्रदान करने लगे। रामतनु बोस की गली से बाहर की सीढ़ी से चढ़कर सभी लोग ऊपर के कमरे में बैठे हुए थे। इधर संध्या होने को आ गयी। सभी लोग अत्यन्त शोकमग्न थे। बातचीत के दौरान योगेन महाराज बोले कि मास्टर महाशय की एक पुत्री भी दिवंगत हो गयी है ओर इसके साथ ही और भी पांच–सात लोगों की मृत्यु का समाचार दिया।

''योगेन महाराज तथा बाबूराम महाराज की मधुर, सहष्दय तथा स्नेहपूर्ण बातों से नरेन्द्रनाथ की माता को काफी कुछ सांत्वना मिली। विभिन्न बातों के बाद रात के नौ बजे बाबूराम महाराज तथा योगेन महाराज बागबाजार लौट गये। योगेन महाराज का इतना स्नेहपूर्ण हृदय था, इतनी अद्भुत निर्णय–क्षमता थी, इतना निःस्पृह निश्छल भाव था ओर इतने प्रकार से वे सबके साथ समान रूप से मिल–जुल पाते थे कि इस उदाहरण से उसका थोड़ा

सा आभास मात्र मिल सकता है। बहन की आत्महत्या का मर्मान्तक समाचार पढ़कर स्वामीजी का कोमल हृदय दुःख–शोक से आन्दोलित हो उठा। फिर इस घटना के माध्यम से भारतीय नारियों के पीड़ामय जीवन का एक प्रत्यक्ष अनुभव भी उन्हें प्राप्त हुआ और इस समस्या के सामाधान हेतु उनके प्राण तड़प उठे। पर तत्काल कर्मक्षेत्र में उतरना उनके लिए सम्भव नहीं था। अतः हृदय में असह्य वेदना को लिये वे हिमालय की ऊँचाइयों की ओर चल पड़े।

अनेक वर्षो बाद इस घटना की याद करते हुए उन्होंने 12 दिसम्बर 1899 को श्रीमती बुल के नाम एक पत्र में लिखा था– ''जिस शान्ति और निर्जनता की खोज मैं बहुत समय से कर रहा हूँ, वह मेरे भाग्य में अभी तक नहीं जुटी। अनेक वर्षों के पूर्व मैं हिमालय गया था, मन में यह दृढ़ निश्चय कर कि मैं वापस नहीं आऊँगा। इधर मुझे समाचार मिला कि मेरी बहन ने आत्महत्या करी ली। फिर मरे दुर्बल हृदय ने मुझे उस शान्ति की आशा से दूर फेंक दिया। उसी दुर्बल हृदय ने, जिन्हे मैं प्यार करता हूँ, उनके लिए भिक्षा माँगने मुझे भारत से दूर फेंक दिया, और इसीलिए आज मैं अमेरिका में हूँ। शान्ति का मैं प्यासा हूँ; किन्तु प्यार के कारण मेरे हृदय ने मुझे उसे न पाने दिया। संग्राम और यातनाएँ, यातनाएँ और संग्राम! .... रावण ने साक्षात् भगवान के साथ युद्ध कर तीन जन्म में मुक्तिलाभ किया था। महामाया के साथ युद्ध करना तो गौरव की बात है।

उन दिनों स्वामीजी ने अपने गुरूभाइयों को पत्र आदि लिखकर परिचितों से सम्पर्क बनाये रखने से मना कर दिया था। अल्मोड़ा से स्वामी सारदानन्द ने 5 सितम्बर 1890 को एक पत्र में लिखा है, ''नरेन्द्र तथा गंगाधार 5–7 दिन हुए यहाँ आये हुए हैं। अब पुनः गढ़वाल की ओर रवाना होंगे। नरेन्द्र के बारम्बार मना करने के कारण आपको इतने दिन उत्तर नहीं दे सका। इसके लिये क्षमा करेंगें। हम लोग भी नरेन्द्र के साथ जाने वाले हैं। कुछ काल पत्र आदि नहीं लिखेंगें, अन्यथा वे हमें अपने साथ नहीं रखेंगें।''

स्वामीजी तथा उनके गुरूभाइयों के अल्मोड़ा प्रवास तथा वहाँ से उत्तराखण्ड की यात्रा के विषय मे समकालीन दलीलों तथा पत्रों का अभाव है। ''इसका कारण है कि इन दिनों स्वामीजी अत्यन्त उच्च भावों में डूबे रहते थे और वे न तो स्वयं कोई पत्र लिखते थे और न ही अपने अन्य गुरूभाइयों को पत्र–व्यवहार की अनुमति देते थे। सम्भवतः इसका कारण यह था कि अपनी बहन की आत्महत्या की सूचना पाने के बाद से उन्हें लगा कि समाचारों के आदान–प्रदान से अपने मूल उद्देश्य में विक्षेप उत्पन्न होगा। उस समय वे पूरी तौर से तीर्थ तथा तपस्या की मनःस्थिति में थे।''[9] ऐसा ही संकेत स्वामी सारदानन्द के 5 सितम्बर के पत्र में भी मिलता है। और यही कारण है कि स्वामीजी की पत्रों में भी मिलता है। और यह कारण है कि स्वामीजी की पत्रावली में 15 जुलाई 1890 से 14 अप्रैल 1899 तक के नौ महीनों के दौरान उनका लिखा हुआ कोई भी पत्र नहीं मिलता।

इस हिमालय–यात्रा के बाद मेरठ से 14 नवम्बर 90 को स्वामी अखण्डानन्द ने प्रमदादास मित्र के नाम एक पत्र में इस यात्रा का एक विहंगावलोकन दिया है– ''अल्मोड़ा (पहुँचने के बाद) से आपको कोई समाचार नही दिया गया है। इसके लिये क्षमा करेंगे। हम लोग नैनीताल होकर (वहाँ के तालाब में स्नान करके मेरे बाएँ ओर के पंजर में थोड़ा दर्द होने लगा।) अल्मोड़ा पहुँचे। वहाँ भाई शरत्चन्द्र तथा सान्याल के साथ भेंट हुई। अल्मोड़ा में हम लोग एक सप्ताह से अधिक काल ठहरे। मैं वहाँ प्रतिदिन निर्मल तथा शीतल झरने में स्नान करता था। पूजनीय भाई (स्वामीजी) को वह स्थान पसन्द न आने के कारण, भागीरथी के तट पर रहने की इच्छा से हम चार लोगों ने वहाँ से प्रस्थान किया। मैं भयंकर कालरोग से आक्रान्त होकर रास्ता चलने लगा।''[10]

संदर्भ सूची

1. युगानायक विवेकानन्द, नागपुर, सं. 1998, खण्ड 1, पृ. 282।
2. स्वामी विवेकानन्द (बंगला), प्रमथनाथ वसु, भाग1, पृ. 192, विवेकानन्द साहित्य, वण्ड 6, प्र. सं. 1963, पृ. 59–70, Life of Swami Vivekanand, Mayawati, Vol. 2, 1913, P. 113।
3. Life of Swami Vivekanand, Mayawati, Vol. 2, 1913, P. 114 स्वामी विवेकानन्द की अल्मोड़े की तीन यात्राएँ, श्रीमती ग्रेटुड इमर्सन सेन, श्रीरामकृष्ण कुटीर, 1963, पृ. 7–8।

4. Complete Works of Sister Nivedita, Vol. 1. P. 61.
5. श्रीमत् सारदानन्द स्वामीजीर जीवनेर घटनावली, कोलकाता, सं. 1355, पृ. 64।
6. स्वामीजीर जीवनेर घटनावली (बंगला), प्रथम खण्ड, पृ. 247–8।
7. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड 7, प्र. सं. 1963, पृ. 396–97।
8. स्वामी सारदानन्द (बँगला), ब्र. अक्षयचैतन्य, प्रथम सं., पृ, 46।
9. विदेहात्मानंद स्वामी, स्वामी विवेकानंद का हिमालय भ्रमण, अद्वेत, आश्रम कलकत्ता, 2017, पृ. 12।
10. शरणागति ओ सेवा (बँगला), पृ. 65–67।

****